लाभ का पद और राजनीति

लोकतंत्र की यह विशेष शर्त जाती है कि उसमें विधायिका, न्यायपालिका तथा कार्यपालिका के बीच अनिवार्य संतुलन हो। अर्थात किसो भी रूप में किसी भी परिस्थिति में तीन में से न कोई अंग लेश मात्र भी मजबूत हो न कोई कमजोर। तीनों अंग एक दूसरे सहायक भी हों और नियंत्रक भी। संविधान निर्माण में विधायिका की भूमिका महत्वपूर्ण होने से विधायिका ने थोड़ा सा पलड़ा अपनी ओर झुका लिया और कार्यपालिका में मामूली सी घुसपैठ बना ली। फिर भी वह घुसपैठ बहुत कम थी क्योंकि संविधान ने लाभ के पदों पर सांसदो की नियुक्ति पर रोक लगाकर विधायिका के कार्यपालिका में हस्तक्षेप को सीमित कर दिया था। किन्तु लाभ के पदों पर रोक होने से कार्यपालिका के कुछ उच्च पदों पर सांसदो की नियुक्ति पर भले ही रोक लग गई कार्यपालिका को कार्यो पर राजनेताओं का नियंत्रण बढ़ता गया।

धीरे–धीरे राजनीति व्यवसाय बनने लगी। राजनीति का तेजी से चरित्र पतन हुआ और राजनीति के प्रति सभी क्षेत्र के व्यावसायिक चरित्र वालों का आकर्षण भी बढ़ने लगा। राजनीति में भीड़ भी बढ़ने लगी। राजनेताओं का पेट भी बढ़ने लगा और उसका पेट इतना बढ़ा कि उसमें सारे देश के सभी पद और सारा धन समाने के बाद भो पेट का एक कोना खाली रहना निश्चित था। इसलिये पदों की छीना झपटी शुरू हुई और कार्यपालिका के पद राजनेताओं से हटकर सांसदों विधायकों को दिये जाने लगे। सामान्य नागरिकों का इस ओर कोई ध्यान नहीं था क्योंकि ये पद उनके तो थे नहीं। किन्तु राजनीति से जुड़े एक व्यक्ति ने जया बच्चन मामले में आवाज उठाकर इसकी पोल खोल दी। जया बच्चन की पोल खुलते ही राजनेताओं ने इसे दूसरों पर कीचड़ उछालने का अच्छा अवसर मानकर कीचड़ उछालना शुरू किया। धीरे–धीरे जब ज्यादा कीचड़ उछला तब पता चला कि इस गंदगी से कोई बचा नहीं है। साम्यवादी भी नहीं जो ऐसे मामलों में बहुत साफ सुधरे माने जाते है।

सोनिया गांधी ने राजनैतिक स्थिति का तीव्र आकलन किया। उसने त्वरित फैसला लेते हुए अपनी संसद सदस्यता और कार्यपालिका पद दोनेा से त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने इस्तीफा देकर अन्य राजनेताओं के समक्ष चुनौती खड़ी कर दी कि या तो वे भी इस्तीफा दें या निर्लज्ज होकर अपना वास्तविक चेहरा समाज के समक्ष आने दें। सभी राजनैतिक दलों ने निर्लज्ज होना अधिक उचित समझा और वे दहाड़ बन्द करके संसद में कानून हेतु मिमियाने लगे। स्पष्ट है कि सोनिया गांधी का निर्णय न कोई त्याग था न ही आदर्श। फिर भी सोनिया गांधी ने अपनी संसद सदस्यता के लिये किसी तरह की तिकड़म करने की अपेक्षा त्यागपत्र देकर एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया। परिस्थितियों के अनुसार त्यागपत्र देने से उनके समक्ष किसी तरह का कोई खतरा तो था नहीं बल्कि जो भी था वह लाभ ही लाभ था। फिर भी सोनिया मनमोहन को छोड़कर एक भी ऐसा नेता नहीं दिखता जो इतना करने के लिये तैयार हो। भारत की राजनीति के पतित चेहरे की तुलना में सोनिया का रत्तीभर त्याग ही पूरी दुनियां में उसके चेहरे का चार चांद लगा गया। सोनिया के त्यागपत्र देने के बाद भी किसी दल के किसी सांसद की हिम्मत नहीं पड़ी कि वह त्यागपत्र की घोषणा करे। इस तरह सोनिया गांधी ने भरी महफिल मे दहाड़कर अन्य सबको अपनी गर्दन झुकाने हेतु मजबूर कर दिया।

कांग्रेस सहित सभी दल कानून संशोधन के लिये उतावले है। दस मई को सत्र बुलाया जा चुका है। कार्यपालिका पर राजनेताओं की पकड़ को कानून से मजबूत करके उसे सांसदों से जकड़ दिया जायगा। यह कैसे लोकतंत्र है यह मेरी समझ में नही आया। लोकतंत्र तो यह था कि कार्यपालिका को स्वतंत्रता की दिशा में बढ़ाया जाता। यदि मंत्रिमंडल मे सांसदों को प्रवेश को पूरी तरह रोककर संसद सदस्यों को सिर्फ विधायी कार्य तक सीमित कर दिया जाता तो बहुत अच्छा होता। किन्तु इतना त्याग तो सोचना ही व्यर्थ है फिर भी सांसद ही सत्ता के अधिक से अधिक पद आपस में बांट लें और देश की सम्पूर्ण राजनैतिक सत्ता कुछ परिवारों तक सिमट जावे यह तो लोकतंत्र का मजाक ही है। सन पचास के बाद सम्पूर्ण देश के कुल सत्ता के राजनैतिक पदों पर जितने परिवारों का समावेश था आज पद कई गुना बढ़ने के बाद भी सत्ता के कुल राजनैतिक पद मिलाकर सन पचास की अपेक्षा एक चौथाई परिवार ही काबिज है। क्या हो जाता यदि ये पद सांसदों और विधायकों से अतिरिक्त अन्य राजनेताओं के बीच बंट जातें। जीते हुए खिलाड़ी यदि सांत्वना पुरस्कार भी अन्य खिलाड़ियों से छीनने का तिकड़म करें तो इसे लोकतंत्र का कौन सा रूप कहा जाय। सभो राजनैतिक दलों में बड़ी संख्या में ऐसे लोग मौजूद है जो योग्यता में तो सांसदों से अधिक हो सकते हैं किन्तु चुनाव नहीं जीत सकें। जिस तरह सोनिया गांधी ने कोई त्याग न करते हुए भी सभी दलों को कटघरे में खड़ा कर दिया उसी तरह हमारी विधायिका कोई त्याग न करते हुए भी कार्यपालिका को पूरी तरह निगल लेने के लांछन युक्त आरोप से बच सकती थी किन्तु उसने वह अवसर भी गंवा दिया। प्रत्यक्ष राजनीति से जुड़े एक और सिर्फ एक व्यक्ति जार्ज फर्नान्डीस ने आवाज उठाई कि यह कानून बनना ठीक नहीं है। उन्होंने प्रधान मंत्री को भी चिटठी लिखी किन्तु दुर्भाग्य देखिये कि उनके दल के भी किसी और साथी ने जार्ज का साथ नहीं दिया मेरी ओर से जार्ज को एकला चलने के लिये बहुत–बहुत बधाई। अप्रत्यक्ष राजनीति से जुड़े संघ में भी सिर्फ एमजी वैद्य जी ने ऐसी आवाज उठाई किन्तु वे भी अकेले ही रहे। मीडिया भी इस मामले में लगभग सांसदों के साथ ही है। या तो मीडिया कर्मी स्वतंत्र कार्यपालिका नहीं समझ पा रहे या उनमें भी व्यावसायिक हित कहीं जुड़े हो सकते है। सांसदों के अतिरिक्त शेष राजनेताओं को भी इस संबंध में हो हल्ला मचाना था किन्तु वे भी चुप है। क्योंकि जरा भी आवाज उठाना उनके राजनैतिक भविष्य के लिये हानिकारक हो सकता है। बेचारी जनता ने तो अब राजनेताओं के कार्यो की समीक्षा ही बंद कर दी है क्योंकि गुलाम को मालिक के किया कलापों के संबंध में टिप्पणी करने का कोई औचित्य नहीं फिर भी इतना स्पष्ट है कि हमारे देश में सांसदों और राजनेताओं का यह प्रयत्न उन पर पुती कालिख को और गहरा करेगा। क्योंकि जिन परिस्थितियों और संदर्भो में यह बिल आया है वह सामान्य स्थिति से हटकर है।

मै तो बहुत पहले से कह रहा हूं कि राजनेताओं में सुधार की अब कोई संभावना नहीं है। जो लोग राजनीति में सुधार का प्रयत्न कर रहे हैं उन्हे यह मृग तृष्णा छोड़ चाहिये। अब तो राजनीतिज्ञों के पंख कतरना ही एकमात्र उपाय है जिसका प्रथम चरण व्यवस्था परिवर्तन अभियान के रूप में शुरू हो चुका है।

पत्रोत्तर

प्रश्न (1) श्री अमर सिंह आर्य, जयपुर, राजस्थान

ज्ञान तत्व अंक एक सौ पांच पूरा पढा। अंक बहुत उपयोगी है। बहुत परिश्रम किया गया है। अनेक बिंदुओं से मेरी सहमति है। कुछ ऐसे हैं जिन पर और अधिक स्पष्टीकरण चाहिये। कुछ बिन्दुओं पर मेरी असहमति है। जिनका विचरण इस प्रकार है।

(1) परिभाषा खंड के क्रमांक तीन मे आपने लिखा कि भारत का आम नागरिक महंगाई, स्वराज्य, बेरोजगारी, मुद्रा स्फीति आदि की परिभाषाएं नहीं समझता। मेरा प्रश्न है कि जब आम आदमी इन परिभाषाओं को ही नहीं समझता तो वह लोक स्वाराज्य को कैसे समझेगा?

(2) समस्याएं खंड में आपने जातिवाद, साम्प्रदायिकता, आर्थिक असमानता, विदेशी कम्पनियों का संकट आदि को कृत्रिम समस्या माना है। मेरे विचार में ये वास्तविक समस्याएं हैं। विदेशी कम्पनियों के कारण हमारे राजस्थान क्षेत्र की कई तेल मिले बंद हो गई।

(3) समस्याएं खंड में ही आपने लिखा है कि अशिक्षा, बालश्रम आदि कोई समस्या न होकर भ्रम है। मेरा मानना है कि ये समस्याएं हैं जो प्रत्यक्ष दिखती है।

(4) स्वराज्य खंड क्रमांक आठ में आपनें वर्तमान पंचायती राज व्यवस्था को सत्ता का विकेन्द्रीकरण माना है, अधिकारों का नहीं। यह बात सच होते हुए भी आम नागरिक तक कैसे पहुंचेगी। इस बात को पढे लिखे लोग भी नहीं समझ पाते।

(5) स्वराज्य खंड दस में आपने लिखा कि सत्ता और गुरू समाज और व्यक्ति के आचरण की मर्यादा भी तय कर रहे हैं और अपनी भी। मेरा आपसे जानना है कि सत्ता और गुरूओं के आचरण की मर्यादा कौन तय करेगा? क्या कभी गुरूओं के आचरण की मर्यादा भी शासन तय करता रहा है?
(6) इसी खण्ड के उन्नीस में आपने लिखा कि शासन कि पास अधिकतम दायित्व और न्यूनतम शक्ति है। मेरे विचार से शासन के पास दायित्व भी अधिकतम हैं और शक्ति भी।
(8) अपराध खंड के क्रम बत्तीस को पढ़ने पर आपके गहरे चिन्तन का आभास होता है किन्तु आपने अपराध नियंत्रण का कोई समाधान प्रस्तुत किया होता तो अच्छा होता।
अपराध खंड में ही आपने पुलिस विभाग की तारीफ की है। मेरे विचार से पुलिस के बढ़ते हस्तक्षेप से आम आदमी त्रस्त है। किसी की हत्या कराने के लिये कई जगह तो पुलिस के थानेदार ही ठेका लेने लगे है। इसके नियंत्रण के लिये आरोपी पुलिस वाले को तत्काल दण्डित करने की व्यवस्था होनी चाहिए।
(10) न्याय व्यवस्था के खंड में आपने पंचायती न्याय व्यवस्था को पर्याप्त महत्व नहीं दिया जो देना चाहिये था। वैसे ज्ञान तत्व अंक एक सौ छः में आपने जरूर लिखा है कि नीचे की इकाइर्यो को न्यायिक, विधायी और कार्यपालिक अधिकार दे देने से अनेक समस्याएं सुलझ सकती है।
समान नागरिक संहिता खंड में आपने समान नागरिक संहिता को अच्छा समाधान माना है। सैकड़ों वर्ष पूर्व स्वामो दयानन्द ने तो आर्य समाज के दसवें नियमों में यह बात साफ–साफ लिख दी कि मनुष्यों को सर्व हितकारी नियम पालन में परतंत्र और प्रत्येक हितकारी नियम पालन में स्वतंत्र रहना चाहिये। इस नियम के संबंध में आपके क्या विचार हैं?
(11) विधायिका खंड के क्रमांक चार में आपन सांसदों की योग्यता संबंधी आवश्यकता को बिल्कुल नकार दिया है यह बात बिल्कुल समझ में नही आई। अयोग्य लोग संसद में जाकर क्या भला कर सकते हैं? मेरे कहने का आशय शैक्षणिक योग्यता मात्र से नहीं है। बल्कि शारीरिक आदि अनेक योग्यताएं इसमें शामिल होना आवश्यक है।
(12) परिवार खंड के क्रमांक सात में मुखिया और प्रमुख नाम से दो पद बनाकर एक समस्या पैदा कर दी है। अच्छा होता कि पद एक रहे या दो, इसका निर्णय परिवार पर छोड़ दिया जाता।
(13) भाषा खंड में आपने सम्पूर्ण भारत में एक भाषा हिन्दी के पक्ष को अटल जी के हिन्दी में दिये गये भाषण की आलोचना करके उलझा दिया है। भाषा श्रोता की होती है, वक्ता की नहीं। यह बात सच है तो भारत का अधिकांश नागरिक तो हिन्दी भाषी है। फिर अंग्रेजी का प्रयोग क्यों?
(14) राष्टीय चरित्र खंड में आपने व्यवस्था से चरित्र को जोड़ दिया। चरित्र पर व्यवस्था का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चरित्र तो नैतिकता से जुड़ा रहता है। चरित्र पर माता–पिता तथा आचार्य का प्रभाव पड़ता है। व्यवस्था से दण्ड विधान तो चलता है किन्तु चरित्र निर्माण नहीं।
(15) आपने केन्द्र सरकार के अनेक अधिकार गांव, तथा जिले को देने का प्रस्ताव रखा है। कल्पना करिये कि आप सरकार में आ जावें तो आप की विदेश नीति, शिक्षा, कृषि, उद्योग? बिजली? सिंचाई आदि की नीति क्या होगी? इस संबंध में आपने अब तक कितना सोच विचार किया है।
उत्तर– आपने ज्ञान तत्व अंक एक सौ पांच का बहुत गंभीरता से अध्ययन किया वह खुशी की बात है किन्तु प्रश्न गंभीर होते हुए भी इतने अधिक हैं कि विस्तृत विवेचना के स्थान पर सूक्ष्म विवेचना ही संभव है। किसी विषय पर किसी पाठक का पूरक होने पर पुनः विस्तृत विवेचना हो सकती है।
(1) चालाक लोग कुछ शब्दों को इतनी बार रिपीट करते हैं कि न समझते हुए भी वह शब्द अर्थ ग्रहण करने लगता है। गरीबी, महंगाई, मुद्रास्फीति, सेन्सेक्स, विकास की दर, आदि ऐसे ही शब्द हैं। पेट्रोल का मूल्य बढने से रिक्शा चालक को प्रसन्न होना चाहिये किन्तु वह भी इसलिये दुखी होता है क्योंकि उसने पेट्रोल की मूल्यवृद्धि के दुष्प्रभाव की बात कई बार सुन ली है। हम भी लोकतंत्र की लोक नियंत्रित तंत्र की परिभाषा विशेष लोगों को समझा देंगे तो बार–बार बोलने से वह बिना समझायें भी सामान्य जन को समझ में आ जायेगी। आप लोक स्वराज्य को जन–जन तक पहुंचाने के लिये शब्द पुनरोक्ति सिद्धान्त का प्रयोग करिये।
(2) वास्तविक या स्वाभाविक समस्याएं वे हैं जो व्यवस्था की गलत नीतियों की प्रतिक्रिया से पैदा होती है। चोरी, डकैती, बलात्कार, हिंसा, आतंकवाद आदि में परिस्थितियों की भूमिका पांच दस प्रतिशत से अधिक नहीं होती। ये अपराध मानव स्वार्थ से जड़े भ्रष्टाचार आदि के बढ़ने घटने में सामाजिक प्रशासनिक आर्थिक नीतियों का ही प्रमुख योगदान होता है।
(3) कोई व्यक्ति सामान्य से बहुत अधिक कमजोर हो तो वह एक बीमारी है। किन्तु व्यक्ति सामान्य से अधिक स्वस्थ्य रहना चाहे तो वह उसे छूट ह। सम्पूर्ण विश्व में भारत शिक्षा या बालश्रम के मामले मे अनेक देशों से आगे भी है और अनेक से पीछे भी। जिस देश में बलात्कार हिंसा और भ्रष्टाचार निरंतर वृद्धि पर हों वहां अशिक्षा और बालश्रम को समस्या कहना में तो ठीक नहीं समझता आप भले ही समझें। अशिक्षा और बालश्रम को द्र करने के प्रयत्न जारी रहने चाहियें किन्तु प्राथमिकता के कम में उनका स्थान उल्लेखनीय नहीं है।
(4) जब प्रशासनिक अधिकार उपर से नीचे जावें किन्तु विधायी और न्यायिक अधिकार न जावें तो उसे सत्ता का विकेन्द्रीयकरण कहते हैं, अधिकारों का नहीं। बड़ी चालाकी से राजनेताओं ने कहना शुरू कर दिया कि पंचायतें अपनी पंचायत में कानून बना सकती है। मेरा यह दावा है कि पंचायतों को गांव सम्बन्धी निर्णय करने का अधिकार नहीं मिलता तब तक पंचायती राज सत्ता का विकेन्दीयकरण तो है, अधिकारों का नहीं।
(5) सत्ता और गुरूओं के आचरण को मर्यादा समाज तय करता है। सत्ता की मर्यादा तो संविधान द्वारा तय होती है जिसे बड़ी धूर्तता से राजनेताओं ने स्वयं को ही समाज घोषित करके अपने पास कर लिया। गुरूओं की मर्यादा पर समाज का कुछ प्रभाव अभी बचा होने से गुरू लोग छिपकर गड़बड़ कर रहे हैं, प्रत्यक्ष नहीं। एक गुरू का आचरण सामान्य व्यक्ति से अच्छा होना चाहिये। क्या अच्छा हो यह भी स्वयं स्पष्ट है। यह कोई तय नहीं करता बल्कि यह सामाजिक रूप से स्वयं तय हो जाता है।
छः और सात शासन का मेरा अर्थ प्रशासन से हैं सम्पूर्ण शासन व्यवस्था से नहीं। जिसमें विधायिका और न्यायपालिका भी शामिल है। कार्यपालिका का समाज में हस्तक्षेप भी बहुत है और दायित्व भी। शक्ति भी कुल मिलाकर तो आवश्यकता से बहुत अधिक है किन्तु दायित्व की अधिकता के कारण वह कम हो जाती है। हम यदि दायित्व की अधिकता के कारण वह कम हो जाती है। हम यदि दायित्व कम कर दे तो प्रशासन की क्षमता अपने आप बढ़ जायेगी। अपराधों की सफल रोकथाम के लिये मैने अल्पकाल के लिये गुप्त मुकदमा प्रणाली का एक विलक्षण फार्मूला प्रस्तुत किया है। यदि किसी जिले के एसपी कलेक्टर और जिला न्यायाधीश सर्व सम्मति से महसूस करें कि उस जिले मे भय, प्रलोभन या राजनैतिक, प्रभाव से अपराधी दण्ड से बच रहे हैं तो वे अल्पकाल के लिये अपने जिले में गुप्त रूप से गुप्त मुकदमा प्रणाली शुरू कर सकते है। इस प्रणाली में गुप्तचर पुलिस न्यायालय म मुकदमा प्रस्तुत करेगी और न्यायालय की गुप्तचर इकाई उस मुकदमें का गुप्त ट्रायल करके सजा देगी। अपील होने पर उच्च स्तरीय गुप्तचर न्यायालय पुनः गुप्त ट्रायल कर सकता है। यह तरीका सारी दुनिया में अपराध नियंत्रण के लिये आदर्श बन सकता है। आठ और नौ मैने पुलिस विभाग की आवश्यकता का महत्व बताया है, पुलिस वालों की तारीफ नहीं की है। पुलिस वालो का तो बुरा होना कोई नई बात नहीं है। उन्हें ट्रेनिंग हो इस बात की दी जाती है। भूल तब होती है जब पुलिस वालो से चोरी डकैती बलात्कार के साथ–साथ अनाज, हेलमेट, शराब, बन्दी और छुआछूत जैसे मामले में भी काम लेना शुरू करते हैं। यह हमारी या तो मूर्खता ह या धूर्तता। हम चाहते हैं कि वह अपराधियों से तो कड़ाई करे और हमसे शराफत। यह बेकार बाते हैं। पुलिस को अपराधों की रोकथाम तक सीमित करने की आवश्यकता है। अन्य कार्यो के लिये आप दूसरी पुलिस बना सकते है। आपने पुलिस वाल को तत्काल दण्डित करने की बात कही तो डाकू को तत्काल दण्ड क्यों नही। मैने सुझाव दिया है कि तत्काल दण्ड दिये जाने वाले कार्यो की एक सूची बनाई जाय और न्यायालय की क्षमता अनुसार उसे काम देकर अन्य सभी पंचायतों को दे दें। जुआ शराब, गांजा, वैश्यावृत्ति, छुआछूत आदि के मामले

स्थानीय पंचायतें दख सकती है। ग्राम पंचायत के विरूद्ध जिला पंचायत तथा और उपर अपील हो सकती है। पुलिस का भी हस्तक्षेप समाज में कम हो जायेगा और फैसले भी तत्काल होने लगेंगे।

मैने पंद्रह वर्षो तक के कठिन परिश्रम के बाद एक लाइन का निष्कर्ष निकाला कि वर्तमान अधिकांश समस्याओं का एक समाधान आर्य समाज का दसवां नियम है।

दुर्भाग्य से आर्य समाज ने भी इस नियम को न कभी स्वयं समझा न दूसरों को समझाया। हम रामानुजगंज आर्य समाज के लोग भी प्रत्येक साप्ताहिक सत्यंग में इस नियम को भी अन्य नियमों के साथ पढ़ लेते थे किन्तु कभी समझे नहीं। जब समझ में आया तब पता चला कि इस नियम का कितना महत्व है। गांधी जी ने इस नियम को खूब अच्छी तरह समझा था किन्तु गांधीवादी भी वैसी ही भूल कर रहे है जैसी आर्य समाजी। अब हम आर्य समाज के दसवें नियम को केन्द्र बनाकर आंदोलन की रूपरेखा बनी है।

(11) सांसदों को तो सामान्य लोगों से अधिक योग्य होना ही चाहिये। मै इससे सहमत हूं। किन्तु योग्यता के मापदण्ड संसद तय करेगी या मतदाता। मतदाता जिसे नियुक्त करता है उसका वह नियुक्ति कर्ता है। मापदण्ड या तो नियुक्ति कर्ता तय कर सकता है या उससे उपर की इकाई। संसद न नियक्ति कर्ता है न उसके उपर की इकाई। वह तो स्वयं नियुक्त है। चूकि मतदाता स्वयं में सर्वोच्च इकाई है, अतः मापदण्ड के उनके असीमित अधिकारों में कोई कटौती नहीं की जा सकती है। पूरे देश के लोग किसी अनपढ़ या पागल को ही अपना नेता चुनना चाहें तो क्या एक डाक्टर या कोई और अधिकारी उन्हें रोक सकता है? मतदाताओं को यह बताया जा सकता है कि यह व्यक्ति पागल है किन्तु मतदाताओं को निर्णय से रोका नहीं जा सकता।

(12) आज अनेक परिवार इसलिये टूट रहे हैं कि बुजुर्ग नई पीढ़ी को अधिकार नहीं देते और यदि बुजुर्ग नई पीढ़ी को अधिकार दे दे तो उसकी स्वयं की स्थिति कुत्ते के समान हो जाती है। ये दोनों स्थितियां ठीक नहीं। इसलिये जैसी हमारी राष्ट्रीय व्यवस्था में प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के दो पद है और जिस तरह उनकी भिन्न भूमिकाएं हैं वैसे ही दो पद, दो भूमिकाएं परिवार गांव जिला प्रदेश में भी उचित प्रतीत होती है।

(13) भाषा के संबंध में केरल के बालकृष्ण पिल्लई जी ने भी प्रश्न उठाया है। हमारे सचिव कैलाश जी तो इस संबंध में इतने दृढ़ हैं कि वे शत प्रतिशत हिन्दी का प्रयोग करते है। मेरे विचार में भाषा सबकी एक हो या भिन्न–भिन्न यह प्रश्न व्यावहारिक दृष्टिकोण से हल करना चाहिये सैद्धान्तिक नही। क्या आप सहमत हैं कि यदि सारी दुनियां की एक सरकार बन जावे तो सारी दुनिया पर एक भाषा थोप देना उचित होगा? यदि कोई विदेशी दूसरे देश में जाता है और उसे उस देश की भाषा मालूम है तो वह कभी अपनी भाषा मे नही बोलता। यह बिल्कुल असत्य प्रचार है कि विदेशी अपनी भाषा में बोलते हैं। एक झूठ बार–बार बोलने से सच नही बन सकती। मेरे विचार में सबको अपनी–अपनी सुविधानुसार भाषा चुनने की सुविधा होनो चाहिये। भारत की केन्द्रीय सरकार की भाषा हिन्दी हो इससे मै सहमत हूं किन्तु हिन्दी को सिद्धान्त, सस्कृति या किसी भावना के आधार पर दूसरों पर थोपने के मै विरूद्ध हूॅ। सबको अपनी–अपनी भाषा के व्यावहारिक दृष्टिकोण के आधार पर निर्णय की सुविधा होनी चाहिये।

(14) चरित्र का संबंध नैतिकता से है। नैतिकता की पृष्ठभूमि नीतियों से बनती है। नीति निर्धारण व्यवस्था करती है। व्यवस्था दो प्रकार की है। शासन व्यवस्थ, समाज व्यवस्था। समाज व्यवस्था छिन्न–भिन्न की जा रही है और शासन व्यवस्था ही समाज व्यवस्था का स्थान ग्रहण कर चुकी है। इसलिये चरित्र पतन के लिये व्यवस्था ही उत्तरदायी है। विचारों से नीतियां बनती है। नीतियों से चरित्र बनता है। चरित्र का नितीयों के कार्यान्वयन पर प्रभाव पड़ता है। इसी तरह चरित्र से शिक्षा का भी कोई संबंध नहीं होता। चरित्र पर तीन का प्रभाव होता है। जन्म पूर्व के संस्कार , पारिवारिक पृष्ठभूमि, सामाजिक परिवेश। सामाजिक परिवेश के बनने बिगड़ने में व्यवस्था का बहुत बड़ा योगदान होता है।

(15)यदि हम सरकार बना लें तो पांच काम केन्द्र सरकार के पास रखकर शेष सब कार्य परिवार गांव जिला, प्रदेश और केन्द्र सभा को सोंप दगे। इन सब इकाइयों को अपनी–अपनी सीमाओं के अन्तर्गत अपने–अपने विषयों में विद्यार्थी कार्यपालिक और न्यायिक अधिकार होंगे। केन्द्र सरकार इन अन्य इकाइयों के संबंध में पांच विषय छोड़कर कोई नियम कानून उनकी सहमति के बिना नहीं बना सकेगी। शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, बिजली, सिंचाई आदि विषय केन्द्र सभा से लेकर परिवार तक के बीच जिसके जिम्में मे रहेगा उसकी नीति बनायेगा। जैसे रेल और डाक विभाग केन्द्र सभा के जिम्में रहेंगे। केन्द्र सभा केन्द्र सरकार से पृथक रहेगी। केन्द्र सरकार का चुनाव और गठन तो वर्तमान तरीके से होगा। विस्तृत विवरण हेतु आप मेरी पुस्तक भावी भारत का संविधान मूल्य पंद्रह रूपये या भारत का प्रस्तावित संविधान मूल्य दो रूपये की मंगाकर पढ़ सकते है।

प्रश्न (2) श्री महेश सांख्यधर, व्यंग्यलोक, बिजनौर, उत्तर प्रदेश

ज्ञान तत्व पढ़ता हूॅ। व्यवस्था तो दर्शन का ही दूसरा नाम है। आप अपना दर्शन स्पष्ट करें। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सहमति बतायें। ईमानदार बनाने का कारखाना कैसे स्थापित हो इसका भी तरीका बताइये। शक, हूण, मुसलमान, फ्रांन्सीसी, अंग्रेज, जो भी चाहे हम पर शासन कर लेता है। यह गुण हमारा है या उनका।

उत्तर – हमारी व्यवस्था में पांच मूल आधार होंगे। 1–सत्ता का अकेन्द्रीयकरण, 2– अपराध नियंत्रण की गारंटी, 3– सीमित आर्थिक असमानता, 4– श्रम महत्व वृद्धि, 5– समान नागरिक संहिता। मै गांधीवाद के इस विचार से सहमत हूॅ कि शासन के अधिकार, दायित्व तथा हस्तक्षेप न्यूनतम होना चाहिये। मैं गांधीवाद के इस विचार से असहमत हूॅ कि सामाजिक बुराईयो की रोकथाम के लिये शासन को कानून बनाना चाहिये। मै शासन को अभिरक्षक की भूमिका से हटाकर प्रबंधक की भूमिका में लाने के लिये सक्रिय हूॅ। मेरे विचार में देश में लोगों को ईमानदार बनाने का सबसे श्रेष्ठ उपाय यही है कि देश में बेइमान बनाने के कारखानों को बंद कर दिया जाय। सरकारीकरण और समाज में शासन का बढ़ता हस्तक्षेप बेइमान बनाने के काम में दिन रात लगे हुए है। यह भारत की विशेषता है कि हम शक, हूण, मुसलमान, फ्रांसीसी, अंग्रेज आदि देशों के हजारों वर्ष गुलाम रहन के बाद भी उन्हें भगाकर स्वतंत्र होने में सफल रहे। अब हम पर विदेशी गुलामी का खतरा नही के बराबर है। किन्तु इस बार जो स्वदेशी गुलामी आई है जिसमें हमें सब कार्यो मे शासन का मुखापेक्षी बनाया जा रहा है इस गुलामी से मुक्ति ज्यादा कठिन है। फिर भी हम इस गुलामो से मुक्ति हेतु प्रयत्नशील हैं।

प्रश्न–3– श्री सच्चिदानन्द जी सिकन्दरा राउ, हाथरस, उत्तर प्रदेश

ज्ञान तत्व अंक एक सौ आठ पढ़ा। आपने कृष्णचन्द्र जी सहाय के पत्र के उत्तर क्रम में बड़े ही सुन्दर शब्दों में गांधीवादियों के प्रति मन की भडांस निकाली है। आपने शब्दों के जाल से गांधीवादियों को लालची और बेवकूफ बताने का प्रयास किया ऐसा मूझे महसूस हुआ।

उत्तर – मैने अंक एक सौ आठ में जो कुछ लिखा है उसमें मैने अपने विचार प्रकट किये हैं। अब तक मै उन्हें सही समझ रहा हूं। यदि उसमें विचार कोई बात असत्य होगी तो सुधारने मे मूझे कोई आपत्ति नहीं है किन्तु मै डांटने या नाराजगी व्यक्त करने से प्रभावित होने वाला नहीं हूॅ। आप नाराज होने की अपेक्षा खंडन के पक्ष में विचार रखते तो मुझे और खुशी होती। फिर भी आपने पत्र लिखा यह कम खुशी की बात नहीं है।

मै सदा से मानता रहा हूॅ कि भारत मे ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व में गांधी वादियों को छोड़कर कोई ऐसी जमात नहीं जो सत्ता के अकेन्द्रीयकरण की स्पष्ट सोच रखती हो। अन्य सभी संस्थाएं सुराज्य को अपना घोषित लक्ष्य भी मानती हैं और सारी सक्रियता भी उनकी उसी दिशा में है। गांधीवादी सुराज्य के स्थान पर स्वराज्य को लक्ष्य मानते है। जहां तक चरित्र और लालच की बात है तो अब तक गांधीवादी चरित्र के मामले मे भी ठीक ह और त्याग के मामलें में भी। आमतौर पर गांधीवादियों पर लालच का आरोप लगाया नही जा सका भले ही कुछ अपवाद हों। मैने कभी और कहीं ऐसा संकेत

नहीं दिया है क्योंकि मै जिनके चरित्र को निकट से जानता हूँ उन पर यह आरोप लगाने का कोई प्रश्न ही नहीं है। यदि किसी लाइन से ऐसा आभास होता हो तो मुझे लिखियेगा। जो लोग धुर्त या लालची हैं उनसे मुझे क्या उम्मीद हो सकती है कि मै उनसे विचार मंथन में अपनी शक्ति लगाउं। एक सिद्धान्त है कि होशियारी जब सीमा से बहुत आगे बढ जाती है तो धूर्तता में परिवर्तित हो जाती है और शराफत जब सीमा से बहुत आगे बढ़ती है तो मूर्खता या बेवकूफी में बदल जाती है। आप लोगों में धूर्तता या चालाकी का तो प्रश्न ही नहीं है, समझदारी का संकट देखकर हम लोग परेशान हो रहे हैं।

सर्वोदय के अधिकांश कायक्रमों का ढांचा प्रच्छन्न साम्यवादी बनाते है। मैने आपके प्रमुख लोगों के जो भी भाषण सुने उनमें एक–एक भाषण में दस–दस बार अमेरिका और संघ विरोध शामिल होता है। विषय चाहे कोई भी हो इससे मतलब नहीं। किसी तरह घुमा फिराकर साम्राज्यवाद और साम्प्रदायिकता तक आपका विचार सीमित हो जाता है। इराक और अफगानिस्तान पर अमेरिकी आक्रमण के समय आप खूब सक्रिय रहे। अफगानिस्तान में जब कट्टरवादी शासकों ने बुद्ध की मूर्तियां तोड़ीं तो आप चुप रहे। अफगानिस्तान में सोलह वर्ष पूर्व एक मुसलमान ने इसाई धम ग्रहण कर लिया था। अभी उस व्यक्ति को फांसी का आदेश हो गया और शर्त रखी गई कि वह पुनः मुसलमान बने तो उसे छोड़ा जा सकता है। अन्यथा फांसी होगी। अमेरिका के दबाव मे वहां की सरकार ने उसे रिहा कर दिया तो पाकिस्तान और अफगानिस्तान के मुसलमानें ने रिहाइ के विरूद्ध प्रदर्शन किया। इसमें आपकों साम्प्रदायिकता नहीं दिखती है। और लोग क्या करते हैं यह मेरी चिन्ता का विषय नहीं किन्तु यदि आपकी सोच इस तरह एकपक्षीय होगी तो हम लोग अवश्य चिन्ता करेंगे क्योंकि आप जो भी कर रहे हैं उसमें न आपका राजनैतिक स्वार्थ छिपा है न कोई आर्थिक लालच।
गंभीरता से विचार करिये कि सारा भारत हिंसा की ओर बढ़ रहा है। राजनीति पूरी तरह भ्रष्ट और बेलगाम प्रमाणित है। निराश लोग बन्दूकें उठाने लगे है। नक्सलवाद ने वर्तमान व्यवस्था को हिंसक चुनौती की घोषणा कर दी है। ऐसी विकट स्थिति में आप कोकाकोला और स्वदेशी साबुन का आंदोलन चला रहे हैं। आप अपनी कीमती ताकत को क्यों नहीं ऐसे मुद्दों पर लगाते हैं जो पाथमिक महत्व के हैं। मैने आपकों कुछ नहीं कहा है किन्तु आप मुझे बताइये कि मै आपको क्या कहूँ? आपका कार्य समझदारी का तो नहीं भले ही उसे शराफत की किसी भी श्रेणी में क्यों न रखा जावे। गांधी जी की मृत्यु के बाद आप लोगों ने जो नीतियां अपनाई उसमें दश भी लगातार पीछे गया है और सर्वोदय भी। यदि परिवार का बुजुर्ग सत्तावन वर्ष बाद भी न नीतियो पर विचार करने को तैयार हो न छोड़ने हो तो परिवार के सदस्यों और शुभचिन्तकों के धर्य का बांध तो टूटना स्वाभाविक ही है। हम लोगों ने यह तय किया है कि दश में हिंसा, श्रम शोषण, आतंकवाद, राजनैतिक उच्श्रृंखला, आर्थिक असमानता जैसी ज्वलंत समस्याओं की साम्राज्यवाद और संघ के अन्ध विरोध पर बलि नहीं चढ़ाई जा सकती है। आप चाहे जितना नाराज हों किन्तु आपकों अब इन मुद्दों को भी एजेन्डा में शामिल करना होगा। आप गिने चुने लोग ही सर्वोदय नहीं है भारत की सौ करोड़ जनता सर्वोदय है और हम जनता रूपी सर्वोदय को बतायेंगे कि आप दो तीन लोगों के प्रभाव में साम्राज्यवाद और साम्प्रदायिकता से उपर नहीं उठ पा रहे हैं।

मै आपको आश्वस्त करता हूँ कि जिस दिन मुझे आपकी नीयत पर संदेह होगा उसी दिन मेरा आपका संवाद और संबंध समाप्त हो जायेगा किन्तु नीतियों के मतभेद विचार मंथन और संवाद से दूर हो जायेंगे क्योंकि यदि दोनों ओर एक ही प्रकार की आग जल रही है तो मतभेद लम्बे समय तक टिक ही नहीं सकते इतना मुझे विश्वास है।

प्रश्न (4) श्री वेद व्यथित 1577, सेक्टर–3, फरीदाबाद–121004

मैं अपने मित्रों के पत्रों का उत्तर अवश्य देता हूँ परन्तु अपने असहमति के अधिकार भी उसी दृढ़ता से सुरक्षित रखता हूँ। इसके पूर्व के दो पत्रों के उत्तर आपसे प्राप्त नहीं हुए। हो सकता है कि आपके पास उनका उत्तर न हो।

आपका विश्व हिन्दु परिषद कार्यालय में भाषण हुआ। आप पूरी तरह संघ विरोधी होते हुए भी संघ की शक्ति का आकलन करके, विश्व हिन्दु परिषद भाषण देने पहुंच गये। आपके व्यवस्था परिवर्तन अभियान से मैं पूरी तरह सहमत हूँ किन्तु आपके मन में स्थापित संघ विरोध की ग्रन्थि विरोध की अपेक्षा चर्चा से भी दूर हो सकती है। संघ एक ताकत है। यदि संघ व्यवस्था परिवर्तन में लग जावे तो सफलता निश्चित है। सारी दुनियां म राजनैतिक समीकरण बदल रहे है। ऐसे में यदि भारत आंतरिक समस्याओं से उबर सके और उस प्रयास में व्यवस्था परिवर्तन अभियान की महत्वपूर्ण भूमिका बने तो मुझे बहुत संतोष और खुशी होगी किन्तु इसके लिये आवश्यक है कि आप भारतीय संस्कृति के महत्व को समझ कर अपनी नीतियां तय करें।

उत्तर – मै संघ परिवार की शक्ति को अच्छी तरह समझता हूँ। बल्कि आपसे भी अधिक। संघ के पास भारत में निर्णायक शक्ति है। इतनी अधिक शक्ति होते हुए भी संघ को अब तक किसी समस्या के समाधान में सफलता नहीं मिलना इस बात का प्रमाण है कि नीतियों में कहीं न कहीं भूल है। आतंकवाद, जातीय, कटुता, भ्रष्टाचार, मिलावट, चरित्रपतन, आर्थिक टकराव जैसी भयंकर कष्टकारक समस्याओं की अनदेखी करते हुए संघ परिवार ने साम्प्रदायिकता उन्मूलन जैसी एक समस्या पर अपनी सम्पूर्ण ताकत लगाई। ग्यारह समस्याओं में से एक पर अपनी सारी ताकत लगाकर भी इतना शक्तिशाली संघ कितना सफल हुआ यह हमारे सामने है। मुसलमान अपनी संख्या में लगातार विस्तार कर रहें हैं और संघ उन्हें मात्र गाली देने में व्यस्त है। मुसलमानों की साम्प्रदायिक मनोवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिये एक वर्ष का समय पर्याप्त है यदि संघ के असफल बुजुर्ग बैठकर विचार करना शुरू कर दें। वैद्य जी ने बहुत गंभीर चिन्तन करके यह विचार रखा कि हमें कांग्रेस पार्टी का गुण दोष के आधार पर विवेचना करके समर्थन या विरोध करना चाहिये, अंध विरोध नहीं। वैद्य जी के पक्ष में कोई आवाज नहीं उठी। उल्टे सुदर्शन जी ने हिन्दुओं को अधिक सन्तानोत्पत्ति के माध्यम से आबादी बढ़ाने की सलाह देकर और अधिक हास्यास्पद बना दिया है। इसका तो यही अर्थ हुआ कि अब तक हिन्दुओं की समस्याएं नहीं सुलझने का मुख्य कारण वे संघ वाले है जिन्होने विवाह न करके भूल की। भविष्य में उन्हें सुदर्शन जी क्या सलाह दे रहे हैं? यदि ये बुजुर्ग निराश हो गये हों तो वे सिर पैर की बात करने की अपेक्षा चुप रहने की आदत डालें तो अच्छा होगा।

समाज ने संघ को क्या मदद नही की। धन, सम्मान, शक्ति सब कुछ मुंहमांगा दिया। समाज के अच्छे–अच्छे त्यागी लोगों ने अपनासारा जीवन संघ की लगा दिया। अब भी अनेक होनहार युवक संघ के लिये प्राण देने के लिये तैयार है। किन्तु संघ अपनी राजनैतिक महत्वकांक्षा के कारण सारी चंदन की लकड़ी चाय बनाने में लगा रहा है। मैंने सन् चौरासी में ही कहा था कि भारतीय संस्कृति की सुरक्षा राज से न होकर नीति से होगी। संघ नीति की जगह राज की चिन्ता कर रहा है। संघ ने सन् पचास में हेड़गेवार जी की लाइन छोड़कर भूल की और अब भी कर रहा है। संघ को दलगत राजनीति त्याग कर पूरी शक्ति राजनीति पर नियंत्रण हो जायेगा और यदि संघ इसी तरह भाजपा के माध्यम से सत्ता स्वप्न देखता रहा तो हम संघ के लोगों से निवेदन करेंगे कि वे अब भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिये पुरानी नीतियों के लकीर के फकीरों को विश्राम दे दें।

मेरा भाषण विश्व हिन्द परिषद कार्यालय में हुआ था। विश्व हिन्दु परिषद के देश भर के प्रमुख लोगों ने सुना। मैने स्वयं महसूस किया कि ऊपर के दो चार लोगों की सोच पर ही बुढ़ापे का असर है अन्यथा अन्य सब लोग गंभीर हैं। आतंकवाद के विरूद्ध सबको एक मंच पर आना होगा। राजनीति के पंख कतरने होंगे। अब इस्लाम विरोध के नाम पर राजनेताओं अपराधियो के गठजोंड़ की गुलामी सहन नहीं हो रही है। हम लोगों ने तो विद्रोह का झंडा उठा लिया है। आपको यदि ठीक लगे तो राजनीति के पंख कतरने में शामिल हो जाइये अन्यथा सुदर्शन जी की सलाह पर आबादी बढ़ाइये। आपकी जैसी इच्छा।
यदि मुसलमानें की निरंतर सफलता पर नियंत्रण सहित भ्रष्टाचार आर्थिक ससमानता, श्रम शाषण, आतंकवाद, राजनैतिक उच्श्रृंखलता आदि के समाधान के पुराने प्रयत्नों की असफलता को स्वीकार करके नये ढंग से चिन्तन करना संघ विरोध है तो मै स्वयं को सबसे बड़ा संघ विरोधी मानने के लिये तैयार

हूँ । आपको जल्दी ही पता चल जायेगा कि वास्तव में संघ विरोधी कौन है? समस्याओं का समाधान टुकड़ों में संभव नहीं है क्योंकि सभी ग्यारह समस्याएं विकराल रूप ग्रहण कर चुकी है। शासन प्रणाली चरित्र पतन भ्रष्टाचार और अपराध उत्पादन का कारखाना बनी हुई है। एकमुश्त समाधान करना होगा। राज पर नियंत्रण न करके नीति पर नियंत्रण करना होगां। भावनाओं से नहीं विचार से निर्णय करना होगा। विचारों का आदान–प्रदान जारी रखिये। संभव है कि हम आप विचार मंथन द्वारा अपनी–अपनी भूलों में सुधार करके कहीं न कहीं एक मार्ग पर चलने में सफल होंग। मै आपको आश्वस्त करता हूँ कि यदि संघ ने दलगल राजनीति से दूर रहकर राजनीति पर नियंत्रण के प्रयास में सक्रियता शुरू की तो मुझे संघ के प्रति समर्पित भाव में गर्व होगा और यदि संघ ने नीतियों पर पुनर्विचार नहीं किया तो मै नई राह बनाने से पीछे नहीं हटूंगा।

12/1/111 छ प्रश्न–(5) श्री सुहास सरोदे, अध्यक्ष सर्वोदय विचार परिषद, 19 श्री कृष्ण नगर यवतमाल महाराष्ट

आपका तेरह मार्च का लिखा पत्र मिला। व्यवस्था परिवर्तन अभियान की भूमिका इस प्रकार होनी चाहिये–

(1) प्रारंभ दिल्ली से न करके गांव से करें।

(2) व्यसन मुक्ति और शराब बन्दी पर ध्यान दे।

(3) सहभागी लोकतंत्र का अर्थ समाज व्यवस्था में लोगों का सहभाग हो।

(4) सजीव खेती, वस्त्र स्वावलम्बन, सर्व धर्म समभाव, विनोबा जी का गीताई प्रवचन का सामूहिक पठन, योग, प्राकृतिक चिकित्सा, सफाई, कताई आदि

(5) किशोर, युवा, महिला, शिविर आयेाजनं।

(6) ग्रामदान और ग्राम स्वराज्य की भूमिका गांव में बने।

उत्तर – मुझे ऐसा लगता है आप ज्ञान तत्व नहीं पढ़ते हैं। मैने कई बार लिखा है कि उपरोक्त सभी कार्य हमारे आंदोलन का तीसरा चरण है। पहला चरण है गांवों को निर्णय करने की स्वतंत्रता पर लगी सभी सरकारी बाधाओं से मुक्ति, दूसरा चरण है समाज में बढ़ चुकी ग्यारह समस्याओं पर नियंत्रण, और तीसरा चरण वह है जो आप सुझाव दे रहे है। मै कई वर्षो से आप सबको समझाता रहा कि आपके प्रयत्न निष्फल होंगे किन्तु आप सब उसी दिशा में सक्रिय रहे। विनोबा जी ने ग्राम स्वराज्य का अर्थ गांव को निर्णय करने की अधिकतम स्वतंत्रता लिखा। आप लोगों ने वह नहीं पढ़ा। विनोबा जी की गीता पढ़ना स्वयं में कोई कर्म नहीं है यदि वह कर्म की प्रेरणा न दे या कर्म का मार्ग प्रशस्त न करे। गीता सिर्फ त्याग का ही मार्ग नहीं बताती बल्कि संघर्ष का भी मार्ग बताती है। आप सरकारी कानूनों से जकड़े हुए गांव को पैरों पर खड़ा होने की टेनिंग देने के लिये उतावले हैं। मै पहले गांवो के पैरों क जंजीर काटना चाहता हूँ और उसके बाद उन्हें टनिंग देने में लगूंगा। आपके प्रयत्नों का परिणाम आज तक विपरीत ही रहा क्योंकि आपने जितनी सफाई की, शासन और राजनेताओं ने उससे कई गुना अधिक गंदगी की। आप और तीव्र गति से सफाई को गांधीवाद मानते हैं। ओर मै गन्दगी करने वालों पर रोक को गांधीवाद मानता हूँ। यदि सन् सैंतालीस के पूर्व आप जैसे सलाहकार गांधी जी को मिल गये होते और गांधी जी को विदेशी सत्ता से संघर्ष की अपेक्षा गांव में काम करने हेतु सहमत कर लेते तो देश स्वतंत्र नही होता।

खुशी की बात है कि आप कुछ कर रहे हैं। आप जो कर रहे हैं वह गलत नहीं है। अपनी–अपनी परिस्थितियां होती है। यदि संघर्ष को क्षमता रखने वाला व्यक्ति संघर्ष छोड़कर निर्माण में लगेगा तो उससे समाज को वह लाभ नहीं होगा जो होना चाहिए। किन्तु संघर्ष की क्षमता न रखने वाला व्यक्ति यदि निर्माण भी छोड़ देगा तो समाज को क्षति होगी। मै संघर्ष करने की क्षमता भी रखता हूँ, तैयारी भी है, और कार्य प्रारंभ भी है। आपको मैं पहले स्वयं को तौलने की सलाह देता हूँ । यदि आप वर्तमान व्यवस्था से अहिंसक संघर्ष का मन रखते हो तो अपने कार्य के साथ–साथ इस कार्य से भी जुड़ जाइये अन्यथा जो कर रहे हैं करते रहिये। आपने गीता से प्रेरणा लेकर रेड क्रास की भूमिका अपनाई है जिसमें चाहे अर्जुन घायल हो चाहे दुर्योधन, रेड क्रास सबकी सेवा के लिये तैयार है। मैने गीता से प्रेरणा लेकर ही दूसरी भूमिका समझी है कि सत्ता और अर्थ केन्द्रित व्यवस्था के अधिकारों के विरूद्ध अहिंसक आन्दोलन ही हमारी प्राथमिकता होगी चाहे अधिकारों के विकेन्द्रीयकरण से अत्याचार करने वालों को कितना भी कष्ट क्यों न हो।

प्रश्न–(6) डॉ ताराचन्द्र, हालु बाजार, भिवानी हरियाणा

ज्ञान तत्व अंक एक सौ छः अपने रोजगार गारंटी योजना की भूरि–भूरि प्रशंसा करके पाठकों की आंखो में मुट्ठी भर मिर्च डालने का काम किया है। पांच आदमी के परिवार में से एक को तीन सौ पैंसठ दिन में से सिर्फ सौ दिन साठ रूपयें का रोजगार मिला अर्थात प्रति व्यक्ति प्रतिदिन का औसत तीन–चार रूपया से अधिक नहीं हुआ। इसी में उसका खाना कपड़ाशिक्षा और स्वास्थ्य पूरा करना है। फिर भी आप जैसे लोग प्रशंसा के पुल बांध रहे है।

उत्तर – ज्ञान तत्व अंक एक सौ छः में जो कुछ लिखा उसे आपने मिर्च की मुट्ठी बताया है। मैने लिखा था कि मै नहीं कह सकता कि इस योजना म दोष नही होंगे किन्तु रोजगार श्रृजन का यह मार्ग अन्य मार्ग से सही है। आपने इस योजना को इस तरह गणित से तोड़ा मरोड़ा है जैसे कि आप अकेले गणित पढ़े हैं। अच्छा होता यदि आप इसके पूर्व घोषित किसी अच्छी योजना से इस योजना की तुलना करते। मैने पूर्व की योजनाओं से तुलना करते हुए इस योजना को उनसे अच्छा बताया था। मुझे लगता है कि आपने या तो वह लेख पढ़ा नहीं या आप योजना लागू करने वाले दलों के पेशेवर विरोधी हैं। किसी भूख को भूख मिटाने के लिये दस रूपये चाहिये। कई लोग सड़क से पार हुए। एक आदमी ने उसे दो रूपये दिये आर उस भूखे ने उस दाता को आर्शावाद दिया तो डाक्टर ताराचन्द जी को उसके दो रूपये में धोखा नजर आया। यदि उस भूखे को भरपेट भोजन की व्यवस्था करने वाला दो रूपये वाले की आलोचना करता अथवा हम भी दस रूपये देने वालो की तुलना में उस दो रूपये वाले की प्रशंसा करते तब तो मिर्च की तुलना ठोक थी किन्तु मैने तुलना उनसे की है जो चुपचाप चले गये और जिन्होंने इतनी भी व्यवस्था नहीं की। मेरा आपसे निवेदन है कि आप इस योजना को उस ग्रामीण बेरोजगार की नजर से देंखे जो इस योजना को लाभदायक मानकर इसके और अधिक विस्तार की मांग कर रहा है न कि उस डाक्टर की नजर से देखें जिनके लिये यह रोजगार तुच्छ है। मेरा यह भी निवेदन है कि आप समीक्षा के लिये ज्ञान तत्व अंक एक सौ दो भी पढ़े और उस पर विचार व्यक्त करें।

प्रश्न– (7) श्री कृष्ण कुमार सोमानी, कमानी मार्ग, बलार्ड इस्टेट, बम्बई

आपने भारतीय संविधान पर बहुत कुछ सोचा है। संविधान बहुत छोटा होना चाहिये। सविधान सिर्फ यही बताये कि सरकार कैसी बनेगी, चुनाव प्रक्रिया कैसी होगी, कार्यपालिका न्यायपालिका के अधिकारों की सीमाएं क्या होंगी तथा उनका एक दूसरे से समन्वय कैसे होगा, परिवार गांव, जिला, प्रदेश और केन्द्र के अधिकार और एक दूसरे से संबंध कैसे होगा। साथ में जनता के अधिकार और कर्तव्य भी संविधान घोषित करेगा।

मैने तीन लेख आपकों भेजे थे। एक में एक भारतीय अंग्रेज पत्रकार, जो जार्डन में रह रहा है, उसे भारतीय संस्कृति के प्रति आदर और अपनी पाश्चात्य संस्कृति के प्रति अश्रद्धा का भाव दिखता है। दूसरे लेख में केलीफोर्निया की अंग्रेज महिला ने लिखा है कि इस संचार की विविध संस्कृतियों के

बीच सच्चा संवाद स्थापित करने के विचार और तरीके भारतीय संस्कृति की बहुत बड़ी देन है। तीसरे लेख में वहीं के एक प्रोफेसर ने लिखा है कि बहुसंख्यकों का कर्तव्य है कि वे अल्पसंख्यकों के धार्मिक और सांस्कृतिक विचारों का आदर करें। विदेशी विद्वान तो भारतीय संस्कृति कीर श्रेष्ठता को इस तरह स्वीकारते हैं किन्तु अंधे भारतीय मैकाले पुत्रों को यह बात भारत में रहते हुए भी समझ में नहीं आती।

उत्तर – भारतीय संस्कृति में तीन प्रकार के भारतीयों की कल्पना की गई है 1– धार्मिक, 2–सामाजिक 3–राजनैतिक। तीनों के कार्य क्षेत्र और कार्य प्रणाली भिन्न–भिन्न होती है। धार्मिक हिन्दू आम लोगों को कर्तव्य की प्रेरणा देता है। सामाजिक हिन्दू आम लोगों को न करने योग्य कार्यो से दूर रहने हेतु प्रेरित करता है तथा राजनैतिक हिन्दू आम लोगों को न करने योग्य कार्य न करने हेतु मजबूर करता है। हिन्दू या भारतीय संस्कृति में सिर्फ शब्दों का फर्क है अर्थ का नहीं। यह संस्कृति एक पूण जीवन पद्धति है सिर्फ पूजा पद्धति, शासन पद्धति या संगठन नहीं। अन्य कोई भी धर्म सम्पूर्ण जीवन पद्धति नही।

भारत जब गुलाम हुआ तो राजनैतिक हिन्दू कमजोर हो गया। विशेष स्थिति होने से धर्म और समाज ने मिलकर संघर्ष किया और मुक्त हुए। उचित तो यह होता कि धर्म और समाज सत्ता में हस्तक्षेप नहीं करते किन्तु सत्ता की नीतियों पर आना हस्तक्षेप जरूर रखते। उस समय भारत में तीन गुट अधिक सक्रिय थे 1– गांधीवादी, 2– आर्य समाजी, 3– संघ परिवार। नकली गांधीवादियों ने सत्ता पर कब्जा करके असली गांधीवादियों का वनवास की प्रेरणा दे दी। गांधीवादियों ने न सत्ता से संबंध रखा न सत्ता की नीतियों से। उन्होनें सत्ता को बेलगाम छोड़कर समाज सेवा का काम करने लगे। आर्य समाज ने भी स्वतंत्रता के बाद अपना काम पूरा हुआ मानकर राजनीति से दूरी बना ली और धर्म क्षेत्र में सक्रिय हो गये। संघ जो स्वतंत्रता के पूर्व मात्र सामाजिक संगठन था तथा जिसने स्वतंत्रता संघर्ष में भी अपनी सामाजिक सक्रियता नहीं छोड़ी थी वह स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही सत्ता संघर्ष में कूद पड़ा। संघ ने संघर्ष में धर्म और समाज का धालमेल करके हिन्दू जीवन पद्धति की पहचान को गंभीर क्षति पहचाई। हिन्दू संस्कृति के समक्ष दो तरफा संकट पैदा हो गया। एक ओर तो नकली गांधीवादियों ने असली गांधीवादी दिखने के चक्कर में मुसलमानों की धूर्तता पर कोई रोक नहीं लगाई जिससे हिन्दुओं के मन में असुरक्षा का भाव पैदा हुआ दूसरी ओर संघ ने इस स्थिति का सत्ता संघर्ष में भरपुर उपयोग करने के लिये अपनी मूल संस्कृति को ही छोड़ना शुरू कर दिया। यदि संघ नहीं होता तो भारत में गांधीवादी नीतियां हिन्दुओं के संख्या बल में बहुत कमजोर कर देती भले ही हिन्दू संस्कृति जीवित रहती और कालान्तर में भारत इंडोनेशिया की राह पर चल पड़ता। क्योंकि मुस्लिम संस्कृति ने सारी दुनिया में यह प्रमाणित कर दिया है कि वे जहां भी कमजोर होते हैं वहां धर्मनिरपेक्षता की दुहाई देते हैं और जहां मजबूत होते हैं वहां धर्मनिरपेक्षता का अस्वीकार कर देते हैं। किन्तु यदि भारत में संघ मजबूत हो जाता तो हिन्दुओ की संख्या तो बहुत बढ़ जाती लेकिन हिन्दू संस्कृति का आंशिक इस्लामीकरण हो जाता। फिर भारत में वह संस्कृति नहीं दिखती जिसकी प्रशंसा तीन पाश्चात्य विद्वानों ने अपने लेखों में की है। हिन्दू भी अल्पसंख्यक होता तो धर्म निरपेक्षता और बहुसंख्यक होता तो हिन्दू राष्ट का नारा बुलन्द करता। मुसलमानों की तरह आज संघ भी भारत में हिन्दू राष्ट का नारा बुलन्द करता है।

हिन्दुओं को बहुत सोच समझकर निर्णय करना चाहिए। समाज में हिंसा, घृणा, द्वेष और षड्यंत्र का सहारा लेना बिल्कुल अन्तिम स्थिति मे उपयोगी होता है। जब तक संभव हो तब तक इनका सहारा लिये बिना ही समाधान खोजना चाहिये । इन उपायों का बहुत दूरगामी दुष्प्रभाव होता ह। अतः बहुत सतर्क होकर इन उपायों पर कोई निर्णय लें। संघ को न हिन्दु धर्म से मतलब है न उसकी गुणात्मक पहचान से उसे तो सिर्फ सत्ता चाहिये। गांधीवादियों को न हिन्दुओं की संख्या की चिन्ता है न ही उनमें इस्लाम की नीयत की परख है। उन्हें तो किसी भी हालत में मुसलमानों की आलोचना से स्वयं को बचाना है। किन्तु हिन्दुओं की अपनी एक विशेष पहचान है। उन्हें अपनी संख्या भी स्थिर रखनो है और गुण भी। इसका सबसे सहज मार्ग है स्वयं दलगत राजनीति में गये बिना सत्ता पर ऐसा दबाव कि वह इस्लाम को अपने कुत्सित इरादों से बलपूर्वक रोक सके। यह काम बिल्कुल कठिन नहीं है। आर्य समाज अभी सत्ता, लोलपता से भी दूर है और इस्लाम को भी अच्छी तरह समझता है। आर्य समाज, सर्वोदय और संघ के समझदार लोग मिलकर इस दिशा में पहल कर सकते हैं।

आपका यह पत्र वैसा नहीं है जैसा मेरा उत्तर है। किन्तु आपके पिछले कई पत्रों को पढ़कर मै इस नतीजे पर पहुंचा कि आप कभी तो हिन्दुओं के मौलिक गुणों का बखान करते हुए गुण सुरक्षा को महत्वपूर्ण बता देते है तो दूसरे ही पत्र में आप हिन्दुओं की घटती आबादी से चिन्तित होकर संघ की नीतियों का समर्थन करने लगते हैं। यदि आप सत्ता के खेल में शामिल नहीं है तथा मुसलमानों के साम्प्रदायिक सोच क प्रति भी ना समझ नहीं हैं ता आप संघ सर्वोदय आर्य समाज या और कहीं भी हों अपने–अपने संगठन में आवाज उठायें कि इस्लाम को संवैधानिक तरीके से नियंत्रित करने की पहल हो अन्यथा सबको मिलकर पृथक मंच बनाने की पहल करनी चाहिये। पाठकों के उत्तर प्रश्न और समीक्षा की प्रतीक्षा रहगी। ?

प्रश्न–8– महेश भाई, विजयीपुर, बिहार

प्रस्तुत आलेख समानता या स्वतंत्रता में यह आकलन स्थापित किया गया है बुद्धि और श्रम से प्राप्त परिणाम के एकत्रीकरण पर व्यक्ति का स्वामित्व होता है। जबकि बुद्ध और श्रम के स्वयं के यथार्थ को समझने से यहां परहेज किया गया ह। मेरी समझ में बुद्धि और श्रम का अस्तित्व तभी प्रकट होता है जब बाजार में इनका कोई खरीददार हो। खरीददार के अभाव में कोई मूल्य नही। अतः इनके एकत्रीकरण का कोई परिणाम भी नहीं होता। बुद्धि और श्रम की कमाई पर व्यक्ति का स्वामित्व भी उतना ही असगत हैं जितना यह मान लेना कि बुद्धि और श्रम के एकत्रीकरण का कोई परिणाम भी संभव है।

बुद्धि और श्रम को परिणाम मूलक बनाने के लिये एक खरीददार की आवश्यकता है अर्थात खरीददार बुद्धिजीवी और श्रमिक इन तीनों के जुड़ने से जो भी परिणाम एकत्रित होगा वह एकत्रित परिणाम तीनों के स्वामित्व के अधीन होगा। वैसे तो हिस्सा कशी में तीनों को बराबर का अंश मिलना चाहिये और इसी प्राप्त अंश पर बुद्धि का अपना स्वामित्व होगा तो श्रम का अपना और खरीददार का अपना।

गांधीजी इसी व्यवस्था को टस्टीशीप के नाम से पुकारते थे न कि किसी राजनीति में जन प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को जिसे प्रस्तुत आलेख में इस तरह आकलित किया गया है, सत्ता के अधिकार सामाजिक अमानत है जिस पर दाता का स्वामित्व होता प्राप्तकर्ता तो टस्टी मात्र होता है।

लकिन यहां उपरोक्त सम्बन्धों के आइने में देखना होगा कि खरीददार, बुद्धिजोवी और श्रमिक द्वारा उत्पन्न किया गया परिणाम स्वामित्व की दृष्टि से कैसे उन्हीं तीनों का अधिकार बनकर रहेगा। समाज का नही? इसलिये मुझे लगता है बुद्धिजीवी की बुद्धिश्रमिक का श्रम और इनके खरीददारों का अर्थ अपनी–अपनी निजता में निरर्थक अनुत्पादक सिद्ध हो रहे हैं।

चुकिं हम मानव प्रजाति के हैं, हमने निजता पैदा की है, निजता ने स्वामित्व पैदा किया और स्वामित्व की अंतिम परिणति प्रभुता तक पहुंचती हैं। जिससे सामन्ती परिवेश बनता है।

असमानता ही इस धरती के विराट सौन्दर्य की विशेषता है। लेकिन जब हम मानव प्रजाति के नाते असमानता को समानता के स्तर पर लाने का चिन्तन मनन और तदनुसार परिवर्तन की कोशिशें करते हैं। चुकिं हम बुद्धिजीवी हैं। इसलिये यह हमारे लिये अनिवार्य हो जाता है कि कोई न कोई व्यवस्था हो जो परस्पर के संघर्षो को उत्पन्न होने से रोके। जिसकी लाठी उसकी भैंस की नौबत न आने पाये।

स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, जन्म सिद्ध अधिकार को ही यहां समझने की कोशिश की जा रही है। जन्म सिद्ध अधिकार तभी सुरक्षित रह सकता जब जीने का अधिकार सर्वोपरि स्थान पायेगा। जीने का अधिकार तभी बरकरार रह सकता है जब उसे आजीविका का अधिकार प्राप्त हो। चूकिं हम मानव प्रजाति के बुद्धिजीवी और श्रमीक हैं। अतः हमें आजीविका के संसाधन भी उपलब्ध होने चाहिये। अर्थात अर्थ हमारी स्वतंत्रता को तभी

आजीविका के संसाधनों के साथ लैस होकर जीने के अधिकार को सुरक्षित रखते हुए संरक्षित कर सकती है जब आजीविका के संसाधनों का स्वामित्व निर्धारित हो अन्यथा समानता तथा असमानता का व्यूह ही लोकतंत्र में राजनीतिक ठगी का धंधा चलाता रहेगा।

अंत में मै लोक स्वराज्य की दृष्टि में स्वतंत्रता की परिभाषा क्या हो सकती है उल्लेख करना चाहूंगा।

लोक स्थानीय वासी और उनका स्वराज्य अर्थात कुछ भी थोपा हुआ नहीं। लोक यह तय करे कि उनके जीने का अधिकार उनकी आजीविका के संसाधनों का बंटवारा तथा उनका स्व निर्णय का स्वराज्य अर्थात हर प्रकार की व्यवस्था जो बिना किसी बाहरी दखल के चलायी जाय।

इन कथनों का जो अधिकारों की असमानता और आर्थिक असमानता के संदर्भ में व्यक्त किये गये हैं। सक्षमों को समान स्वतंत्रता और अक्षमों को समान सुविधा कर दिया जाय को और स्पष्ट करने की जरूरत है, सक्षमों को समान स्वतंत्रता का निहितार्थ क्या है और अक्षमों को समान सुविधा का यथार्थ।

हमकों हर हालत मे स्मरण रखना होगा कि लोक स्वराज्य की स्थापना लोकनीति अर्थात स्थानीय नीति से ही संभव होगी। प्रचलित राजनीति की व्यवस्था उसे फिर लील जायेगी और व्यवस्था परिवर्तन का हश्र भी सम्पूर्ण क्रान्ति का सा होगा।

उत्तर – आपने बुद्धि श्रम और खरीददार का जो त्रिकोण बनाया उतना गंभीर मै नहीं हो सका। मेरे विचार में तो दी ही हैं क्रेता और विक्रेता। कहीं बुद्धि क्रेता और श्रम विक्रेता बन जाते तो कभी स्थिति उलट जाती है। धन सम्पत्ति एक माध्यम मात्र है। खरीददार नहीं रहेगा तब क्या होगा ऐसी समस्या अभी निकट भविष्य में आती नहीं दिखती।

गांधी जी ने टस्टी शिप का एक विचार दिया। अधिकारों के लिये टस्टी शिप गांधी जी की दृष्टि मे सैद्धान्तिक रूप से भी अनिवार्यता थी और व्यावहारिक रूप में। यह गांधी जी की मात्र सलाह नहीं थी। आर्थिक टस्टी शिप गांधी जी का विचार था, सुझाव था। दोनों टस्टीशिप के महत्व में अंतर था। अधिकारों के अकेन्द्रीयकरण के संबंध में गांधी जी आर्थिक स्वतंत्रता की अपेक्षा अधिक मुखर थे। इसका अर्थ यह हुआ कि सत्ता के पास के अधिकार मेंरे हैं उसके नही। यदि वह अपना समझने लगे और हम अहिंसक तरीके से अपने अधिकार छीन लें तो हमारा कार्य नैतिक होगा उसका अपराध। किन्तु यदि कोई व्यक्ति अपने कमाये हुए धन का स्वयं को टस्टी न मानकर मालिक माने तो हम उससे अहिंसक और संवैधानिक तरीके से छीन नहीं सकते। दुर्भाग्य से हमने सम्पत्ति के विकेन्द्रीयकरण पर तो गांधी को जोड़कर अधिक चर्चा की किन्तु सत्ता के अकेन्द्रीयकरण को भुला दिया। अब हमलोंगो ने बहस का मुद्दा बदलने की शुरूआत की है। सत्ता के अकेन्द्रीयकरण को हमने अपने आंदोलन का पहला चरण बनाया है और अर्थ के अकेन्द्रीयकरण को दूसरा।

अधिकार शब्द के अर्थ बदल जाते है। अधिकार एक अर्थ Right होता है और दूसरा Power अर्थात शक्ति। हम दोनों को अलग–अलग समझे। अधिकार भी दो तरह के होते हैं 1– प्राकृतिक या मौलिक 2– प्राप्त या सामाजिक संवैधानिक। जीने की स्वतंत्रता हमारा मौलिक अधिकार है जिसमें बिना हमारी सहमति के कोई तब तक कटौती नहीं कर सकता जब तक हम किसी और के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं करते। हमारे जीने की सुविधा मिलना हमारा मूल अधिकार न होकर सामाजिक संवैधानिक अधिकार है। हम इस सुविधा के लिए व्यवस्था से निवेदन कर सकते है, जो भी डाल सकते हैं किन्तु मूल अधिकार के समान हम छीन नहीं सकते। रोजगार की स्वतंत्रता मूल अधिकार हो सकता है रोजगार की सुविधा मूल अधिकार नहीं हो सकता। आप इस पर और विचार करें। मै देखता हूं कि पूराने जमानें में सक्षम लोग स्वेच्छा से दिया करते थे और अक्षम लोग लेन में शर्माते थे। बाद में कुछ गिरावट आई तो अक्षम लोग मांगने लगे और सक्षम लोग मांगने पर देने लगे। अब स्थिति यह है कि अक्षम लोग लेने के लिये लड़ने लगे और सक्षम लोग कतराने लगे। मेरे विचार में यह पतन मांगने वालों के दोष से अधिक आया हैं, देने वालों का दोष कम है। जब दुनियां के सम्पन्न देश कहीं बैठते हैं तो मांगने वाले जिस तरीके से मांगने का उपक्रम करते हैं वह अच्छी परंपरा नहीं है क्योंकि देना उनका कर्तव्य है दायित्व नहीं। लेना हमारा अधिकार नहीं बल्कि सुविधा है।

मैने अंक एक सौ चार में सक्षम और अक्षम शब्द लिखे। हमारी संवैधानिक व्यवस्था अपनी स्थिति के अनुसार पूरे देश मे एक आर्थिक सीमा रेखा बना दे। उसके उपर के व्यक्ति को कोई सुविधा न दे। उस पर कोई बाधा भी न लगावे। सबकों प्रगति की पूरी–पूरी तरह स्वतंत्रता दे दे। सीमा रेखा से नीचे वालों को समान सुविधा दे दे। इसके दो तरीके हो सकते हैं 1– सबको बराबर सुविधा दी जावे 2– सुविधा देकर सबकी कमी को बराबर कर दिया जावे। कोई भी मार्ग अपनाया जा सकता है लेकिन शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, पेंशन आदि सारी सुविधाएं समाप्त करके मात्र एक गारंटो दे दी जावे।

प्रश्न– 9– श्री भरत झुनझुनवाला

समीक्षा– आपका पत्र मिला। आपके विचारों पर मेरा दृष्टिकोण इस प्रकार है– कृत्रिम उर्जा पर कर लगाने से न तो समानता स्थापित होगी नही श्रम की मांग बढेंगी। वर्तमान में तेल के मूल्य दुगने होने पर कोई अंतर नही पड़ा है। इस विषय में आपसे मेरे घर पर चर्चा हुई थी आपने आश्वासन दिया था कि पुनर्विचार करेंगे। इसे गइराई से समझने का प्रयास करे। देश के कुल उत्पादन में कृत्रिम उर्जा का योगदान 5–10 फीसदी से अधिक नही है। इसे दुगुना कर दिया जाय तो विशेष अंतर नही पड़ेगा। 2– मुझे नही लगता कि सम्पत्ति कर से बात बनेगी। 1– वसूली प्रक्रिया बहुत जटिल है। 2– अमीरों की खपत पर टैक्स नहीं लगता है। 3– श्रम साधन एवं समाज हित के माल को प्रोत्साहन नही दिया जाता है। 4– सम्पत्ति कर के निर्धारण में भयंकर भ्रष्टाचार होगा।

मेरा सुझाव है आयकर एवं सम्पत्ति कर को समाप्त करके सभी माल एवं सेवाओं पर एक्साइज ड्यूटी को वसूल करता। साथ–साथ सेवा कर एवं आयात कर। इसमें गरीब एवं श्रम सधन को दूर होना चाहिए। 3– राजनीतिक समाधान जरूरी है– इससे में सहमत हूं। आर्थिक मुद्दे उठाने का उद्देश्य मात्र राजनीतिक आंदोलन की दिशा तय करता है। 4– संविधान के संशोधन से सुशासन स्थापित नही होगा। भ्रष्टाचार के रास्ते खुलेंगे। इसलिये हमें रचनात्मक कार्यकर्ता ब्राहम्ण को जागृत करना होगा।

उत्तर – उत्पादन के लिये उर्जा की आवश्यकता होती है जो दो प्रकार की है 1– जैविक, 2– कृत्रिम। उत्पादन में ये दोनेा एक दूसरे की सहायक न होकर प्रतिस्पर्धी है इसका अर्थ यह हुआ कि एक उर्जा की मांग और पूर्ति दूसरी की मांग और पूर्ति पर प्रभाव डालती है। मांग और पूर्ति घटाने बढ़ाने का सीधा संबंध या तो मूल्य से है या प्रशासनिक प्रतिबंधो से। यदि जैविक उर्जा कृत्रिम उर्जा से महंगी होगी ता कृत्रिम उर्जा की मांग ओर पूर्ति बढ़ेगी जैविक की घटेगी और यदि जैविक उर्जा से कृत्रिम उर्जा महंगी होगी तो कृत्रिम उर्जा की मांग और पूर्ति घटेगी, जैविक की बढ़ेगी। वर्तमान समय में कृत्रिम उर्जा जैविक उर्जा से बहुत सस्ती है। यही कारण है कि जैविक उर्जा बेरोजगार होती जा रही है और कृत्रिम उर्जा के लिये हाहाकार मचा हुआ हैं आज भारत के कृषि उत्पादन में भले ही जैविक उर्जा अधिक और कृत्रिम उर्जा कम लगी हो किन्तु कुल उत्पादन में तो अस्सी प्रतिशत तक कृत्रिम उर्जा का उपयोग हो रहा है। कुल उत्पादन का आधे से अधिक तो ऐसा उत्पादन है जिसमें जविक उर्जा का उपयोग संभव ही नहीं है। शेष में से पचीस तीस प्रतिशत ऐसी है जिसमें दोनों के बीच स्पर्धा है। सिर्फ पांच दस प्रतिशत ही उत्पादन ऐसा है जिनमें मशीनों का प्रवेश नहों है। तीसरा क्षेत्र लगातार सिकुड़ कर दुसरे क्षेत्र में और दूसरा पहले क्षेत्र की ओर सरक रहा है। हमारे क्षेत्र में भी गेहूं कटाई या सड़क किनारे गढ़ा खुदाई का तीसरे क्षेत्र का सुरक्षित कार्य दूसरे क्षेत्र में घुसना शुरू हो गया है।

भारत में स्वतंत्रता के बाद रूपये का अवमूल्यन उच्चास गुना हुआ है तो कृत्रिम उर्जा का मूल्य चालीस से अस्सी गुना तक बढ़ा है और श्रम मूल्य करीब डेढ़ सौ गुना बढ़ा है। इस स्थिति से निपटने के दो तरीके हैं या तो श्रम मूल्य घंटे या कृत्रिम उर्जा से है किन्तु विकास में श्रम की स्पर्धा बुद्धि से है। स्वतंत्रता के बाद यदि भारत का औसत विकास पांच छः प्रतिशत प्रतिवर्ष भी मान लें तो उनचास गुना मुद्रास्फीति के आधार पर कुल श्रम मूल्य साढ़े

तीन सौ गुना बढ़ना चाहिये था जो नहीं बढ़ा जबकि बुद्धि का मूल्य साढ़े तीन सौ के स्थान पर दो हजार गुना अनुमानित बढ़ गया होगा। अर्थात विकास के लाभ में श्रम बहुत पीछे रह गया और बुद्धि बहुत आगे निकल गई। यह पूरी तरह अन्यायपूर्ण था क्योंकि इसने आर्थिक असमानता, अन्याय, शोषण और वर्ग विद्वेष को बढ़ावा दिया। इसलिये जैविक उर्जा का मूल्य कम करने का तो कोई प्रश्न ही नही है, हमारा उद्देश्य तो बुद्धि और श्रम को संतुलित करने के लिये श्रम मूल्य बुद्धि है जिसमें सबसे बड़ी बाधा है कृत्रिम उर्जा। यदि कृत्रिम उर्जा की मूल्य वृद्धि होगी तो जैविक उर्जा की मांग बढ़ेगी और मांग बढेगी तो उसका मूल्य भी बढेगा। कृत्रिम उर्जा की मूल्य वृद्धि से प्राप्त धन के लिये हम अन्य सभी प्रकार के कर हटा सकते हैं जिससे मूल्य वृद्धि का दुष्प्रभाव वस्तुओं के मूल्य पर न पड़। और बचे धन को जैविक इंधन रोटी कपड़ा आदि के मूल्यों में कमी करके या पूरी आबादी में बांटकर खर्च कर सकते है। मैंने आपसे प्रत्यक्ष चर्चा के बाद इस विषय पर और सोचा और अब तो मैं इस संबंध मे अधिक मजबूती से खड़ा हुआ है।

सम्पत्ति कर की वर्तमान प्रक्रिया जटिल और भ्रष्टाचार बढ़ाने वाली है। हमारी नई प्रक्रिया न जटिल है न भ्रष्टाचार बढ़ाने वाली। सम्पत्ति कर लगाकर अन्य सभी कर हटा देने से कुल मिलाकर भ्रष्टाचार घटेगा। सभी वस्तुओं पर एक्साइज ड्यूटी लगाने से तो उपभोक्ता वस्तुएं बहुत महंगी हो जायेगी क्योंकि कृत्रिम उर्जा की मूल्य वृद्धि वैसे ही उनके लागत मूल्य को बढ़ा देगी जिसकी भरपाई सभी कर हटाकर की जा सकती है। सम्पूर्ण सम्पत्ति पर दो प्रतिशत वार्षिक कर भी आर्थिक असमानता की कमर तोड़ने के लिये पर्याप्त होगा।

कानून हमेशा ही भ्रष्टाचार के नये–नये अवसर पैदा करते हैं जो सुशासन के नाम पर लादे जाते हैं और कुशासन बढ़ाते हैं। संविधान संशोधन स्वयं में न अच्छा होता है न बुरा। अच्छा और बुरा होता है उसके प्रावधान। यदि संविधान के प्रावधान बहुत कम कर रहे हैं। मेरे पास वर्तमान संविधान की जो प्रति है उसमें करीब दो सौ पृष्ठ, चार सौ अनुच्छेद और पंद्रह रूपया मूल्य है। हम लोगों ने संविधान संशोधित करके पंद्रह वर्षो के परिश्रम के बाद जो तैयार किया उसमें करीब पचीस पृष्ठ, एक सौ पैंसठ अनुच्छेद तथा दो रूपया मूल्य है। संविधान की जटिलता कम होने से भ्रष्टाचार में कमी आयेगी ऐसा मेरा विश्वास है। हम लोगों ने सुशासन के स्थान पर स्वशासन का संविधान बनाया है। हम जो आंदोलन शुरू कर रहे हैं उसमें आर्थिक या प्रशासनिक मुद्दों पर केन्द्रित है 1 प्रतिनिधी वापसी का अधिकार (2) अधिकारों का विकेन्द्रीयकरण। ये दोनों मुद्दे राजनैतिक संवैधानिक हैं। ये दो मुद्दे बेलगाम राजनीति पर अंकुश लगने का काम करेंगे। आपने ब्राहम्ण को जागृत करने की बात कही। ब्राहम्णसे आपका संभवतः आशय विद्वान से है, ब्राहम्ण पुत्र से नहीं। सिर्फ विद्वानों की जागृति से ही राजनेता अपनी पकड़ कमजोर नहीं होंने दगे। विद्वान इस आंदोलन का नेतृत्व करें किन्तु जागृति तो सम्पूर्ण समाज में ही लानी है। हम आप तथा अन्य विचारक अन्य सब मुद्दों पर विचार मंथन जारी रखें किन्तु राजनैतिक गुलामी से मुक्ति आंदोलन में सबकी सहभागिता आवश्यक